भारतीय समाज व्यवस्था में जातिवाद

डॉ0 हरदेव प्रसाद*

वैदिक काल से आज तक वर्ण व अवर्ण का युद्ध प्रारम्भ है। प्राचीन काल में आर्यो ने इसे देवासुर संग्राम का नाम दिया, अपनो को देव या दैत्य, मूल निवासियों को असुर, दैत्य, अछूत, शुद्र नाम से व्यख्यादित किया। इसी को द्रविड–आर्य भी कहा गया। दरअसल लड़ाई का मुख्य मुद्दा था सामाजिक वर्चस्व। इसी सामाजिक वर्चस्व के लिए बाहर से आयें आर्यो ने इस धरती के मूल निवासियों को गुलाम बनाने के लिए नाना प्रकार के उपक्रम रचे और अन्ततः सफल रहें। उन्होंने मुल निवासियों को गुलाम बनाया और जिहोंने इनकी दासता को स्वीकार नहीं किया, वे पहाड़ी, जंगलो, की तरफ चले गये जो आदिवासी नाम से जाने गये। इन आदिवासियों ने आर्यो के धर्म, संस्कृति को कभी भी स्वीकार नहीं किया। यही नहीं इन आदिवासियों ने मुगलों, अंग्रेजों के शासन काल में भी गुलामी स्वीकार नहीं की, भले ही नाना प्रकार की प्रताड़नाओं को सहना पड़ा। इन आदिवासियों ने अपनी संस्कृति व जीवन शैली को सुरक्षित रखा। शेष जिन मूल निवासियों ने इन आर्यो की पराधीनता स्वीकार कर ली, चुकि वे एक विशाल संख्या में थे, इन्हें साजिश के तहत 6000 जातियों में विभाजित कर क्रमिक असमानता में रख दिया गया। वैसे वैदिक काल में जाति–पाति नहीं बल्कि वर्ण व्यवस्था थी और इस व्यवस्था में गुण–कर्म के आधार पर वर्ण बदला जा सकता था। जैसे विश्वामित्र क्षत्रिय होकर ब्राह्मण तो परशुराम ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय बन गये। गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है– चातुर्वण्यं मया सृष्टा गुण कर्म विभावस। श्रीकृष्ण ने यह नहीं कहा कि जन्म–कर्म विभावशः किंतु पिछले दो हजार वर्षो से इसे जन्मना कर दिया गया अर्थात जो जिस जाति में जन्म लेगा आजीवन उसी में रहना होगा। स्थिति इतनी भयंकर हो गयी कि धर्म तो बदला जा सकता है किन्तु जाति नही। ऐसी रूढ़िवादी व्यवस्था के पीछे दरअसल सामाजिक प्रभुता का सूत्र था, जिसे ब्राह्मणों ने बड़ी साजिश के साथ अंजाम दिया और अपने मकसद में सफल रहें। यह एक तरह से सोचा–समझा धार्मिक आरक्षण था, जिसे वैदिक आरक्षण भी कहा जा सकता है। यद्यपि मंड़ल आयोग द्वारा देश की 54 प्रतिशत आबादी को 27 प्रतिशत आरक्षण देने पर इन सवर्णो ने जमीन–आसमान एक कर दिया, नाना प्रकार के नंगे नाच किये, आत्मदाह तक का स्वांग रचे। लेकिन उस प्राचीन वैदिक आरक्षण का ही परिणाम है कि आज 15 प्रतिशत आबादी वाले सवर्ण हर क्षेत्र में 80–90 प्रतिशत पदों, सम्पत्तियों पर कब्जा जमाये बैठे है। ब्राह्मणो ने शिक्षा का अहंकार, क्षत्रियों ने रक्षा का अहंकार, वैश्यों ने धन–सम्पत्ति का अहंकार आपस में बॉट लिया, शेष उस विशाल भारत के जिम्में सेवा का काम दिया अर्थात पिछड़े दलित, आदिवासी का काम शारीरिक श्रम और इन द्विजो की सेवा करना मात्र है। इस अमानवीय आरक्षण के द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य को पूरी समाज व्यवस्था पर पूर्ण वर्चस्व व एकाधिकार स्थापित हो गया, क्योंकि इनके इस आरक्षण का विरोध करने वाला कोई रहा ही नहीं। जो 85 प्रतिशत इस आरक्षण से मार खा रहा था, उसके पास सिवाय शारीरिक श्रम व सेवा के अतिरिक्त कुछ नही था। इस विशाल वर्ग को शिक्षा, अस्त्र–शास्त्र, धन सभी से पूर्णतया वंचित कर दिया गया। 24 धंटे शरीरिक श्रम के अलावा उसके पास सोचने–विचारने का समय ही कहाँ था। फिर जब शिक्षा से वंचित था तो सोच विचार का प्रश्न ही कहाँ से उठेगा? ब्राह्मणों ने बड़ी चालाकी से इस सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करके इसे धार्मिक रूप देते हुये ईश्वर द्वारा रचित बता दिया। पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, पुर्नजन्म का महाजाल रचकर 85 प्रतिशत लोगों को इस मानसिक गुलामी को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया।

भारत की इस समाज व्यवस्था में मानवता नाम की कोई चीज नहीं थी, क्योंकि एक तरफ सवर्ण वर्ग श्रममुक्त होकर भी सारे अधिकार व सुख–सुबिधाओं का भोग कर रहा था। तो दूसरी शूद्र वर्ग कठोर शारीरिक श्रम करके भी दाल–रोटी के लिए मोहताज था। उसे सामाजिक रूप से प्रताड़ित किया जाता व हेय दृष्ट्रि से देखा जाता। तभी ड़ॉ. अम्बेड़कर ने कहा कि सामाजिक अन्याय, राजनैतिक अन्याय से ज्यादा दुखद होता है। जातिवाद के इस जकड़जाल के चलते ही एक शूद्र शंबूक का वध हुआ तो एक

* **असि. प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, बीर अब्दुल हमीद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर**

शूद्र एकलव्य का अगूठा मांग लिया गया। मनुस्मृति जो कि द्विजों का संविधान था, उसमें बड़े विस्तार और स्पष्ट रूप में जातिगत कर्म, पेशा और उसके उल्लंघन पर निर्धारित दंड़ों की व्यवस्था की गई है, जो एक फासिस्टवादी या ब्राह्मणवादी विचारधारा है। अफसोस कि आज के इस वैज्ञानिक, प्रगतिशील युग में भी जयपुर में हाईकोर्ट परिसर में मनु की प्रतिमा स्थापित की गई है। शासन– रक्षा सब कुछ था, परन्तु राष्ट्रीयता की भावना नही थी। तभी तो ड़ॉ. अम्बेडकर ने कहा कि– Between caste and country, caste comes first।

मध्य काल में कबीर, रैदास, गुरूनानक आदि संत वर्ग के बीच से निकले और शूद्रो की दयनीय स्थिति देख द्रवित हुये। इन संतो ने कर्मकाण्ड, रूढ़ियों, जातिबाद पर कड़ी चोट की। इन संतों की कथनी–करनी में कोई अन्तर नहीं था। ये स्वयं परिश्रम करके अपनी जीविका चलाते थे ये बैठौले और श्रमयुक्त नही थें। कबीर दास जुलाहे का काम करके कपड़ा बुनते थे, रैदास चमड़े का काम करते थे, गुरूनानक कृषि का काम करते थे अर्थात जहां द्विजवर्ग ने समाज में श्रम को नीच और श्रममुक्त को गौरवान्वित कर रखा था, वहीं इन संतों ने स्वयं श्रम करके समाज श्रम की महत्ता को बढ़ाया। शारीरिक श्रम के साथ–साथ ये संत निर्गुण ईश्वर का उपदेश भी देते थे, किन्तु पाखंड, कर्मकाण्ड, ऊँच–नीच की भावना से पूर्णतः मुक्त थे। इस प्रकार इन संतो ने विशेषकर कबीरदास ने निर्गुण पंथ के माध्यम से द्विजों की वर्ण व्यवस्था पर, जातिवाद पर आक्रमण करके शूद्रो में एक जागृति लाने का प्रयास किया। ये सामाजिक क्रांति के अग्रदूत बने, किन्तु ब्राह्मणवादियों ने इसे खतरा समझकर तुलसीदास के द्वारा विरोध में सगुण पंथ को खड़ा कर दिया। कबीरदास के दर्शन, विचार, पंथ की भरपूर उपेक्षा की गई और तुलसीदास को महिमामंडित किया गया। यद्यपि आज के युग में कबीरदास ही प्रासंगिक है, लेकिन कॉलेज, विश्वविद्यालयों, पाठ्यक्रमों, पुस्तकालयों में हर जगह तुलसीदास छाये है क्योंकि तुलसीदास ने ब्राह्मण महिमा का गुणगान अपनी रचनाओं में किया है। आज तुलसीदास की पुजा होती है और कबीर की उपेक्षा उनके साहित्य को साहित्य नहीं माना जाता। रामविलास शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, निराला–सभी तुलसी को बड़ा जनकवि मानते है। यह जातिवादी मानसिकता ही है कि तुलसीदास ने लिखा– *''ढ़ोल गवार शूद्र पशु नारी सकल तारना के अधिकारी। पूजहि विप्र सकल गुणहीना, शूद्र न गुण ज्ञान प्रवीना।''* क्या आज कोई भी बुद्धिजीवी ऐसी जातिगत भावनाओं को स्वीकार कर सकता है, कदापि नही। लेकिन तुलसीदास के इसी ब्राह्मण महिमा के गुणगान की वजह से हिन्दी के आधुनिक कवि लेखक उन्हें कबीर की तुलना में बड़ा जनकवि लिखते है जो कि जातिवाद को प्रोत्साहन देना है। जबकि कबीरदास ने जातिवाद, पाखंड, कर्मकाण्ड की घोर भर्त्सना करके मानवता के पक्ष में काम किया है।

आज व्यवहारिक रूप में जातिवाद को बनाये रखने की कोशिश की जा रही है और इसे भारतीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। कांग्रेस, भाजपा व वामपंथी पार्टियों के शिखर नेतृत्व पर लगातार सवर्णो का एकाधिकार धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण रूप से ब्राह्मणों का आरक्षण यथावत बना हुआ है। प्राकृतिक क्षेत्र में पूर्ण रूप से ठेकेदारी आर.एस.एस. ने ली है। मीडिया में भी इन्हीं वर्णों का एकाधिकार है। इस तरह आज भी 85 प्रतिशत जनता को राजनीति, धर्म, साहित्य, संस्कृति, मीडिया आदि क्षेत्रों में पूरी तरह से वंचित किया जा रहा है। 85 प्रतिशत के प्रति इस सामाजिक अन्याय के खिलाफ जो भी आवाज उठाता है उल्टे उसे ही जातिवादी घोषित कर उपेक्षित किया जाता है। मध्यकाल में कबीर, रैदास, गुरूनानक ने इस जातिवाद व कुरीतियों के खिलाफ अलख जगाने का प्रयास किया तो उन्हें भारतीय इतिहास व साहित्य में उपेक्षा मिली। बाद में ज्योतिबा फूले, इ.वी. रामास्वामी नायकर पेरियार, ड़ॉ. अम्बेडकर, ड़ॉ. लोहिया इत्यादि ने इस जातिवादी व्यवस्था के खिलाफ संधर्ष किया तो उन्हें भी भारतीय इतिहास और साहित्य में उपेक्षित कर दिया गया। आज मुलायम सिंह, लालू प्रसाद यादव, मायावती, रामविलाश पासवान, जितनराम माझी जैसे राजनेता जब क्षेत्रीय दल बनाकर 85 प्रतिशत में कार्य कर रहें है तो उन्हें भी जातिवादी कहा जा रहा है। यह बात दीगर है कि ब्राह्मणवादी शक्तियाँ मिडियां व साहित्य के माध्यम सें इन पर जातिवाद का लेबल चस्पा कर उनके मनोबल को तोड़ने की सतत् साजिश कर रही है। डॉ. अम्बेडकर, जगजीवन राम, कांशीराम, मायावती व रामविलाश पासवान को दलितों का नेता, चौधरी चरण सिंह को जाटों का नेता, मुलायम, लालू व शरद यादव को यादवों का नेता कहा जाता है। ऐसे संबोधन के पीछे इन नेताओं के व्यक्तित्व व कृतित्व को सीमित दायरे में बाँधना

है। जबकि हकीकत यह है कि जातिय आधार पर ही ये सवर्ण सदियों से राजनीति कर रहे है लेकिन जब सामाजिक न्याय हेतु उसी आधार को 85 प्रतिशत वाले अपनाते है तो उन्हें जातिवादी कहकर उपेक्षित करने की कोशिश की जाती है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादत ठीक ही कहते है कि *''जब आप जाति के आधार पर सब तरह की सुख–सुबिधा, अवसर भोगते रहते है, तब तक जातिवाद नहीं रहता। लेकिन दूसरे जब उन्हीं आधारों पर अधिकार माँगने लगते है, तब आप चिल्लाने लगते है कि जातिवाद फैलाता जा रहा है। आपके हिसाब से दो सौ साल,हजार साल से जातिवाद नहीं था, क्योंकि एक ही वर्ण या वर्णो के लोग आपस में मिल–बाँटकर रहते रहते थे, एक दूसरे के हित की रक्षा करते थे, इसलिये जातिवाद नहीं था। अब दूसरों ने कहना शुरू किया कि जिस आधार पर आप आये हुए है उस आधर पर हमको भी अवसर दो तो आपको लगा कि जातिवाद फैलाया जा रहा है, लोग बाँटे जा रहे है। एकाधिकार था तो नहीं बँटता था।''* राष्ट्रीय सहारा, 30 दिसम्बर 2003।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वे लोग जो सदियों से धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यक क्षेत्र में आरक्षरण लेकर विशेषाधिकरों का प्रयोग करते आ रहे है, वे समता, भातृत्व हेतु संधर्ष नहीं कर सकते। कथनी, उपदेश, आदर्श में भले ही समाजवाद–साम्यवाद पर लच्छेदार दर्शन झाड़े लेकिन व्यावहारिक धरातल पर वे जातिवादी मानसिकता से मुक्त नही हो सकते। डॉ. अम्बेडकर ने एक लम्बे समय के अनुभव के बाद ही वाध्य होकर धर्म बदला, क्योंकि धर्म बदला जा सकता है किन्तु जाति नही। डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज व्यवस्था के इस जातिवाद से बुरी तरह प्रताड़ित थे, इसीलिये उन्होंने लखनऊ में 1948 में एक कांफ्रेस में दलितों, पिछड़ों एवं अल्पसंख्यकों से राजनैतिक एकता के लिए अपिल की थी और लखनऊ में ही 1981 में बाबू जगजीवन राम ने भी वैसी ही एकता के लिए आवाज बुलंद की थी, क्योंकि अपने लम्बे राजनैतिक जीवन में बाबूजी को भी जातिवाद का कटु अनुभव हो गया था। डॉ. अंबेडकर, डॉ. लोहिया, बाबू जगजीवन राम– तीनों शूद्र राजनीतिज्ञों ने भारतीय समाज व्यवस्था में समाहित जातिवाद का गहन अध्ययन करने के पश्चात् दलितों पिछड़ों के राजनीतिक एकता की अपील की, लेकिन दुर्भाग्य है कि दलित, पिछड़ों ने सीख न लेकर अलग–अलग क्षेत्रिय दलों का गठन किया और शार्टकट विधि अपनाकर सत्ता की लाइन में लग गये। इक्का–दुक्का को सफलता मिली भी, किन्तु शार्ट पीरियड के लियें ही, क्योकि एक तो 85 प्रतिशत में एकता नहीं हआ और दूसरे बिना सामाजिक धरातल बनाये राजनैतिक मंच स्थापित कर लिया, तो इसे टूटना ही था।

दलित, शूद्र राजनेता शार्टकट व मौसमी राजनीति तक ही सीमित हो जाते है। उनमें संयम, धैर्य व सहनशीलता का अभाव है, सत्ता की कुर्सी तक पहुँचनें की हड़बड़ी है, ऐसे में सफलता कैसे मिल सकती है? ब्राह्मणवादी शक्तियां शूद्रो क हाथ में सत्ता नहीं देखना चाहती, ऐसे में कोई न कोई षड़यंत्र करके इसे असफल कर देती है। 1993–94 में उ. प्र. में सपा–बसपा गठबंधन हुआ तो कि अंबेडकर, लाहिया, जगजीवन राम के बताये सिद्धान्त के आधार का पहला गठवंधन था। किंतु आर.एस.एस.–बी.जे. पी. ने मायावती को मुख्यमंत्री पद का प्रलोभन देकर पथ से डिगा दिया क्योंकि यह एकता, ब्राह्मणवाद के लिये जबरदस्त खतरे का संकेत था। उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार कांग्रेस ने आर.पी.आई के तेज तर्रार नेता वी.पी. मौर्य को इंदिरा गाँधी ने मंत्री बाकर व अन्य नेताओं को राज्यपाल आदि पद देकर आर. पी.आई. को तोड़ दिया था। वस्तुतः चाहे कांग्रेस हो या भाजपा ये कभी भी दलितों, पिछड़ों आदिवासियों में एकता नहीं देखना चाहती, क्योंकि इनकी ब्राह्मणवादी व्यवस्था के लिए यह खतरा है। ये समय–समय पर मौका देखकर नाना प्रकार के उपक्रम करके दलितों, पिछड़ों आदिवासियों को भरमाती रहती है। कभी कांग्रेस दलित बस्तियों में सहभोज का आयोजन करती है तो कभी भाजपा सहभोज खिचड़ी का आयोजन करती है। उल्लेखनीय है सपा–बसपा के गठबंधन से घबड़ाकर हिंदू संतो व विश्व हिन्दू परिषद के लोगों ने काशी में डोम राज के घर सहभोज का आयोजन किया था। आज आजादी के 6 दशक बीत गयें लेकिन दलितों, पिछड़ों आदिवासियों को भारत के शासन–प्रशासन में उचित भागीदारी नहीं मिल सकीं, आज भी धार्मिक सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों मे सवर्णो का वर्चस्व बना हुआ है। शूद्रों, दलितों, आदिवासियों को समय–समय पर नाना प्रकार के स्वांग रचाकर भरमाया जाता है उन्हें विभाजित किया जाता है ताकि एक ना हो सके। इन्हीं उपक्रमों के माध्यम से यह बहुजन सत्ता सें वंचित है। कभी–कभी कुछ दलितो, पिछड़ों, आदिवासियों को लाल बत्ती नसीब करा दिया जाता है, पर वह

यस–मैन को, तेजतर्रार को नहीं। दूर्भाग्यवस आज भी यह बहुजन सोया है, सवर्णो की चालों की काट नहीं कर पाता, जबकि कांग्रेस व भाजपा काट तैयार करने में माहिर है। अंबेडकर की काट के लिए बाबू जगजीवन राम को समानान्तर खडा किया गया, किन्तु दीर्ध अनुभव व सफल वरिष्ठ राजनीतिज्ञ के बावजूद वे प्रधानमंत्री के पद तक नहीं पहुँच सके। आज तेजतर्रार दलित राजनीतिज्ञ मायावती की काट खोजी जा रही है। दरअसल हकीकत यहीं है कि कांग्रेस व भाजपा दोंनों ही दलों पर पूर्णरूपेण सवर्ण वर्चस्व है, वहाँ आदिवासी हो या दलित या पिछड़े इन्हे कभी भी नेतृत्व नहीं मिल सकता। ये इन पार्टियों के लिए महज डिस्पोजल सीरीज है– कल्याण सिंह, उमा भारती जैसों का उदाहरण सामने है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यादव, विरेन्द्र सिंह : नई सहस्ताब्दी का दलित आन्दोलन मिथक एवं यथार्थ।
2. यादव, विरेन्द्र सिंह : दलित आन्दोलन की पृष्ट्रिभूमि जाति की अवधारणा एवं विकास की प्रक्रिया।
3. भारती, कंवल : दलित विमर्श की भूमिका इतिहास बोध, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004।
4. सत्यप्रेमी पुरूषोत्तम : दलित साहित्य और सामाजिक न्याय।
5. यादव, बिरेन्द्र : 21वीं सदी का दलित विमर्श।
6. कुमार, विवेक : बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन सम्यक प्रकाशन द्वितीय संस्करण की भूमिका के सभार से, 2007।
7. दुसाध, एच.एल. : सामाजिक परिवर्तन और बी.आर.अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, 2005।
8. दूबे, अभय कुमार : आधुनिकता के आइने में दलित, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, सी०एस०डी०एस० संस्करण 2008, नई दिल्ली।
9. भारती, कंबल : मायावती और दलित आन्दोलन, रमणिका फाउडेशन प्राकसन, दिल्ली।
10. राजन, अम्ब्रेश : भाई बहुजन समाज पार्टी, पी.सी.आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली।